'उपल्या' और 'हिन्दू' मराठी दलित उपन्यासों में चित्रित 'आंबेडकरवाद'

गोदावरी सुदर्शन आरगे
पी.एच.डी शोधार्थी
हैदराबाद विश्वविद्यालय,
हैदराबाद

उपन्यास मानवीय अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति का अत्यंत प्रभावशाली माध्यम है। इसलिए दलित उपन्यासकारों ने अपने निजी जीवनानुभूतियों को उपन्यासों के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास किया है। उपन्यास के माध्यम से लेखक दलित पात्रों के जीवन को समग्रता के साथ प्रस्तुत कर सकता है। उनके जीवन के सभी पहलुओं को वह उजागर कर सकता है। जिससे दलित वर्ग के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, शैक्षिक तथा आर्थिक संदर्भों से जुड़े जीवन का चित्रण किया जा सकता है। इसलिए 'आंबेडकरवाद' से प्रेरित दलित साहित्यकारों ने उपन्यासों का सृजन किया है। इन उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने दलित वर्ग के लोगों की पीड़ाएँ, यातनाएँ, अन्याय, अत्याचार, शोषण, उनका जीवन संघर्ष तथा उनमें निर्माण हुई चेतना का चित्रण किया है। यह उपन्यास व्यक्ति विशेष पर केंद्रित न होकर पूरे समाज पर केंद्रित हैं। इसमें व्यक्त पीड़ाएँ, दुःख आदि किसी एक व्यक्ति की न होकर वह पूरे समाज की हैं। देश और समाज की परिस्थितियों, परंपराओं और नीतियों के विरुद्ध विद्रोह करने के उद्देश्य से ही दलित उपन्यास लिखे गए हैं। इनमें समाज की विषमतावादी परिस्थितियों को केंद्रीत कर उनकी विद्रूपताओं का चित्रण किया है। प्रेमचंद मानते है कि, "मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"[1]

डॉ. बाबासाहब आंबेडकर जी के विचारों से प्रेरित होकर आज दलित समाज के लोग शिक्षित हुए हैं। संगठित होकर अपने ऊपर होने वाले अन्याय, अत्याचार तथा शोषण का विरोध कर रहे हैं। साथ ही अपने संवैधानिक अधिकारों के प्रति सजग हो गए हैं। वे 'आंबेडकरवाद' से प्रेरित स्वतंत्रता, समता, बंधुता तथा सामाजिक न्याय आदि सामाजिक मूल्यों को समझ रहे हैं। इसलिए वे समाज में समता तथा अधिकार पाना चाहते हैं, लेकिन उन्हें हर जगह संताप या अपमान को ही सहना पड़ रहा है। इस अपमान के विरुद्ध उनके मन में चेतना जागृत हो गई है। यही संताप, अपमान, आक्रोश, विद्रोह तथा चेतना दलित उपन्यासों का आधार है। दलित लेखक स्वयं भुक्तभोगी होने के कारण उन्होंने अपनी संवदनाओं को उपन्यासों के माध्यम से चित्रित किया है। उन्होंने पात्रों में नई चेतना का निर्माण करने का प्रयास किया है। अतः यह संवेदना या चेतना दलित लेखकों तथा गैर दलित लेखकों के पात्रों को अलग करती हैं। "दलित साहित्य के मूल में बौद्ध चिंतन, ज्योतिबा फुले और आंबेडकर के विचार, नीग्रो साहित्य लेखन और अश्वेत महिला लेखन में दिखाई देता है और साथ ही साथ कबीर, रैदास जैसे संत कवि इनकी प्रेरणा हैं।"[2]

'आंबेडकरवाद' शब्द का उद्भव बाबासाहब के महापरिनिर्वाण के पश्चात उच्चारित किया गया है। 70 के दशक में दलित आंदोलनों के कारण भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में 'आंबेडकरवाद' नामक एक नई संकल्पना का उदय हुआ जो आगे जाकर सामाजिक तथा साहित्यिक क्षेत्र के साथ जुड़ गया है। आज यह शब्द राजनैतिक, सामाजिक क्षेत्र के साथ-साथ साहित्यिक क्षेत्र में भी रूढ़ हो गया है। यह एक व्यापक विचारधारा है, जो डॉ. बाबासाहब आंबेडकर जी के विचारों को, तत्त्वज्ञान को दर्शाती है। इस विचारधारा में महात्मा गौतम बुद्ध, चार्वाक, संत कबीर, महात्मा ज्योतिबा फुले, छत्रपति शाहू महाराज तथा डॉ. बाबासाहब आंबेडकर आदि सभी के विचारों का समावेश है। यह इन सभी महापुरुषों के विचारों को समेटे हुए है, जिसके कारण इसका क्षेत्र व्यापक बन जाता है। बाबासाहब ने सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक आदि सभी

क्षेत्रों में व्यापक दृष्टि से अपने विचारों को प्रस्तुत किया है लेकिन उन्होंने कभी उसे किसी 'वाद' के रूप में प्रस्तुत नहीं किया। अत: यदि 'आंबेडकरवाद' को जानना है तो उनके ग्रंथों तथा भाषणों के माध्यम से ही इसे ढूंढा जा सकता है। बाबासाहब ने सन् 1916 में लिखे 'कास्टस् इन इंडिया देअर मेकॅनिझम,जेनिसिस ॲण्ड डेव्हलपमेंट' इस निंबध से लेकर उनके महापरिनिर्वाण के पश्चात प्रकाशित 'बुद्ध ॲण्ड धम्म' तक कई विषयों पर विद्वत्तापूर्ण विचारों को प्रकाशित किया है। उनके इन सभी विचारों को 'आंबेडकरवाद' कहा जा सकता है।

'आंबेडकरवाद' यह एक परिवर्तनशील विचार है। इसमें परंपरागत रूढ़ियों, विचारों तथा व्यवस्थाओं में परिवर्तन करने की क्षमता है। इसने सभी क्षेत्रों में परिवर्तन लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। इसने मनुष्य के विचारों में परिवर्तन किया है। हजारों वर्षों से भी हीन अवस्था में जीवन जीने वाले दलित लोगों में क्रांति की ज्वाला सुलगाई है। गुलामी का जीवन जीने वालों में स्वाभिमान की भावना जगाई, जिसके कारण वह गरीब, पीड़ित, शोषित दलित समाज आज उच्च शिक्षित हुआ है। संगठित होकर अपने ऊपर होने वाले अन्याय के विरुद्ध संघर्ष कर रहा है। उसमें एक नई चेतना निर्माण हुई है, जो उसे धर्माधिष्ठित समाज व्यवस्था के विरुद्ध क्रांति तथा विद्रोह करने की प्रेरणा देती है। इसके लिए साहित्य का क्षेत्र भी अपवाद नहीं है। आंबेडकरवादी आंदोलनों का प्रतिबिंब हमें आज दलित साहित्य में दिखाई देता है। आबेडकरवाद ही दलित साहित्य की ऊर्जा है, चेतना है, जो मनुष्य के विचारों को व्यक्त करने के लिए स्वतंत्रता प्रदान करती है। इसलिए दलित साहित्य का प्राण 'आंबेडकरवाद' ही है।

'उपल्या' 1956 से 1996 तक के समय पर आधारित यह उपन्यास दरअसल आत्मचिंतन है। दलित विमर्श के संवेदनशील विस्फोटक सन्दर्भ का एक साहित्यिक विश्लेषण । लेखक शरणकुमार लिंबाले ने 'उपल्या' उपन्यास में 1956 से 1996 तक चार दशकों के दौरान दलित आंदोलन का चित्रण करते हुए दलित आंदोलन पर प्रकाश डाला है । डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर के महानिर्वाण के बाद, दलित आंदोलन विभाजित हो गया और कार्यकर्ताओं ने अनेक तरह के अलग-अलग संगठन बना लिए। इससे कार्यकर्ताओं में यह भावना पैदा हुई कि वे ही आंदोलन के मुख्य कार्यकर्ता हो और आंदोलन उन्हीं के हाथ में हो। इस उपन्यास का हालांकि कथानक यथार्थवादी है, उपन्यास चार भागों में विभाजित है, इसलिए उपन्यास में कोई सुसंगतता नहीं है। लेखक के अनुसार, "इस आत्मचिंतन या विश्लेषण के मूल में हैं कुछ स्मृतियाँ, कुछ बहसे, कुछ साहित्यिक पाठ, कुछ समाचार, समाज की गतिविधियाँ और उनसे उत्पन्न पतिक्रियाएं, आदि हैं।"[3] ग्रामीण समाज की वास्तविकताओं, दलितों के खिलाफ अन्याय-अत्याचार और उत्पीड़न, अज्ञानता, समाजीकरण, अपमान, भूमि हथियाने के आंदोलन, अस्तित्व की लड़ाई आदि के खिलाफ आवाज उठाने के लिए दलित आंदोलन के कार्यकर्ताओं ने सबको आकर्षित करने का काम कर रहे थे।

इस उपन्यास की केंद्रीय चिंता समकालीन दलित आन्दोलन है। उपन्यास के पहले भाग में एक सनातन ब्राह्मण परिवार के दलितीकरण का चित्रण है। कैसे उनके कमरे के सहकर्मियों ने उसे दलितीकरण का कारण बना देते है, इस पर प्रकाश डाला गया है। दूसरे भाग में दलित आंदोलन पर है। इनमें रिपब्लिकन पार्टी, दलित पैंथर्स और नामकरण पर आधारित समस्याओं का चित्रण किया है। जाति और सरकार के खिलाफ दलित आंदोलन द्वारा छेड़ा गया संघर्ष को इसमें दिखाया है। तीसरे भाग में ब्राह्मण परिवार की बेटी दलित की पत्नी बनती है और नया जीवन शुरू करती है। इससे सवर्ण में विचार परिवर्तन और अंतर्जातीय विवाह को दी गई मान्यता समकालीन स्थिति का प्रतिबिंध बन जाता है। उपन्यास के चौथे भाग में लेखक शरणकुमार लिंबाले ने इस तथ्य को उजागर करने में सफल होते हैं कि दलित आंदोलन और एक संगठन में मिलकर काम करने वाले कार्यकर्ता एक दूसरे के कैसे दुश्मन बन जाते हैं।

इस उपन्यास में अनेक मुख्य पात्र है- अनिरुद्ध देशमुख, रोहिदास नागदिवे, दयानंद किनिकर,मिलिंद कांबले, विजय पगारे, गौतम गंगुरडे, ईश्वर इंगले आदि हैं।

सनातन ब्राह्मण परिवार का एक पुत्र अनिरुद्ध देशमुख कॉलेज की शिक्षा के लिए छात्रावास में प्रवेश करता है, लेकिन समान प्रतिशत के साथ एक दलित छात्र मिलिंद कांबले अपने सहयोगी के रूप में कमरे में रहने के लिए आता है। एक दलित छात्र के रूप में, उन्होंने दलितों के खिलाफ अन्याय और अत्याचारों को देखा है। इतने सारे छात्र एक साथ आते हैं और दलित छात्र संगठन बनाते हैं। संगठन

की दैनिक बैठके कमरे में ही होती रहती है। इस कारण अनिरुद्ध का अध्ययन नहीं हो पाता है। वह हॉस्टल में कमरा बदलने की बहुत कोशिश करता है। लेकिन वह सफल नहीं हो पता है। कमरा या सहकर्मियों को बदलने के लिए उसे सहमति नहीं मिलती है। इसके अलावा घर की खराब स्थिति के कारण यह अलग कमरे का खर्च नहीं उठा सकता है। लेकिन इस स्थिति में भी वह शिक्षा प्राप्त करता है और अपराधी बन जाता है। नाम बदलने के आंदोलन के दौरान हाडोलती, जलकोट और बधौना गांवों में हुए दंगों के लिए अनिरुद्ध को दोषी ठहराया जाता है। ड्यूटी के दौरान अनिरुद्ध को गांव के लोग पत्थरों से कुचल कर जिंदा जलाने की कोशिश करते हैं। लेकिन एक सहिष्णु पुलिस अधिकारी उसकी जान बचाता है।

दलित आंदोलन के माध्यम से समाज की रक्षा करने वाले प्रमुख व्यक्ति रोहिदास नागदिवे, मिलिंद कांबले, विजय पगारे, दयानंद किनिकर, गौतम गंगुरदे ईश्वर इंगले आदि हैं। वहीं राहुल बसोडे, रमा बाबर, याकूब शेख, भीमा भोले, पंडित कनाडे, निकम्मा, त्रिशरण और अन्य छोटी-छोटी शख्सियतों के साथ-साथ प्रमुख हस्तियां भी परिवर्तन आंदोलन के माध्यम से नाम परिवर्तन की लड़ाई लड़ रहे हैं। रवींद्र साने, रश्मि, संरक्षक मंत्री ने माने जैसी कुछ हस्तियों के नाम सामने आए हैं। इनमें से अनिरुद्ध, मिलिंद कांबले, रोहिवास नागदिवे अपने अलग व्यक्तित्व का निर्माण करने की कोशिश करते हैं। दलित आंदोलन के ये सभी कार्यकर्ता समाज और सरकार से संघर्ष करते हैं। उपन्यास के प्रत्येक भाग में कार्यकर्ताओं के कथनों के माध्यम से समकालीन इतिहास को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। लेकिन यह एक ऐसा उपन्यास है जो दलित आंदोलन के उभार, संघर्ष और विखंडन पर दृष्टिपात किया है।

'हिंदू' उपन्यास को उपल्या की अगली कड़ी के रूप में जाना जाता है। गैर दलितों द्वारा अन्याय और उत्पीड़न के खिलाफ दलित कार्यकर्ताओं का संघर्ष उपन्यास उपल्या में दिखाई देता है। इसी प्रकार 'हिन्दू' उपन्यास में दलित नेता तात्या कांबले अपने अम्बेडकर जलमा के माध्यम से दलितों में सुधार लाने का प्रयास करते हैं। लेकिन सवर्ण समाज यह बदलाव नहीं चाहता। इसके परिणामस्वरूप तात्या कांबले की हत्या कर दी गई। पूरी कहानी इसी घटना के इर्द-गिर्द घूमती है।

एक ओर उग्र हिंदुत्व की लहर और दूसरी ओर इसके खिलाफ एकजुट होने वाले दलितों के स्वाभिमान को इस उपन्यास के माध्यम से महसूस किया जा सकता है। हिन्दू उपन्यास में मुख्य पात्रों के रूप में तात्या कांबले, प्रभाकर कावले, मानिकचंद और गोपीचंद के साथ, सदानंद कांबले, रोहित, सोनाली, कस्बे गुरुजी, रामभाऊ कवाले, सुरेखा माने, जगन्नाथ पंडित और दीपक माने आदि मुख्य पात्र हैं।

'हिन्दू' उपन्यास का मुख्य पात्र तात्या कांबले हैं। उनकी बचपन की शिक्षा अचलपुर गांव में हुई। दो-तीन पीढ़ियों तक तमस्गिरा के परिवार के रूप में जाने जाने के बावजूद, तात्या कांबले एक ऐसे नायक हैं, जो 'अम्बेडकर जलसा' के माध्यम से दलित भाइयों को अज्ञानता से बाहर निकालते हैं और जैसे कट्टरपंथियों का मनोरंजन करने के बजाय समाज के लाभ के लिए राजनीति को जोड़ते हैं। परिवर्तनकारी आंदोलन के माध्यम से समाज की रक्षा करते हुए सभी लोग इसके शिकार हो जाते हैं और जलसाकर तात्या कांबले का नाम हमेशा के लिए मिट जाता है। प्रभाकर पूरे उपन्यास में एक खलनायक की मुख्य भूमिका निभाते हैं। वह तात्या कांबले से नाराज हैं क्योंकि उनके पिता का सरपंच आरक्षण उनके कारण चला गया है।

गांव के दलितों को अन्याय के खिलाफ लड़ने के लिए प्रेरित करने वाले तात्या कांबले की हत्या में प्रभाकर और गांव के अन्य लोग शामिल होते हैं। सभी नेता दलितों की हत्या कर आम दलितों को सबक सिखाने की कोशिश करते हैं। इस घटना ने समाज में व्याप्त विषम तनाव और विकृत जाति व्यवस्था पर प्रकाश डाला है। 'संघर्ष' इस उपन्यास का एक महत्वपूर्ण तत्व है।

तात्या कांबले की हत्या का पर्दाफाश करने के लिए दलित कार्यकर्ता एक साथ आ जाते हैं। लेकिन मानिकचंद और गोपीचंद जैसे भ्रष्ट लोग दलितों को अपने स्वार्थ के लिए इस्तेमाल कर लेते हैं। तात्या कांबले के छोटे भाई सदानंद कांबले ने उन्हें सरपंच के पद से हटाकर समाज कल्याण मंत्री बनाने का वादा किया है। इस घटना के कारण दलित आंदोलन में फूट पड़ता है। इस कारण विकृत जाति व्यवस्था के बोझ तले दबे दलितों और उत्पीड़ित दलित समाज की असल तस्वीर हमें साफ दिखाई देती है। अतः 'हिन्दू' उपन्यास सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। I

उपन्यास 'उपल्या' और 'हिन्दू' का सामाजिक चित्रण करते हुए सामाजिक दर्शन, दलित, उच्च जाति के भीतर श्रेष्ठ हीनता का चित्रण, उच्च जाति समाज में अंधविश्वास, परंपरा, अम्बेडकरवादी विचारधारा का आविष्कार आदि पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। 'उपल्या' और 'हिंदू' उपन्यास 1956 से 1996 के चार दशकों के दौरान समाज और दलित आंदोलन में हुए परिवर्तनों को दर्शाते हैं। डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर के निधन के बाद दलित समाज में जो परिवर्तन हुए हैं, उन्हें दिखाया गया है। आजादी के बाद की अवधि में भी, उच्च जातियों द्वारा दलितों के साथ अवहेलना और अपमान जनक व्यवहार किया जाता है। ऐसा लगता लगता है कि दलित समाज कई अपवादों, रूढ़ियों, परंपराओं का शिकार हो गया है। हालाँकि आज दलित समाज में सुधार हुआ है, लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों को अपनी आजीविका के लिए उच्च जातियों पर निर्भर रहना पड़ता है।

डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर द्वारा दलितों को दिए गए "शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो"[4] आदर्श वाक्य के साथ, हजारों दलित युवा, अंबेडकर के विचारों को स्वीकार करके, सभी के खिलाफ लड़ते हैं और उनके खिलाफ अन्याय और उत्पीड़न के खिलाफ आवाज उठाते हैं। 'उपल्या' और 'हिन्दू' उपन्यासों के शीर्षक अर्थपूर्ण लगते हैं। डॉ. बाबासाहेब द्वारा शुरू किए गए आंदोलन में एक साथ काम करने वाले कार्यकर्ता प्रतिद्वंद्वी बन जाते हैं। वे चाहते हैं कि आंदोलन उनके हाथ में हो और आंदोलन का एकाधिकार उनका हो। बंदरों की उपल्या प्रजाति में भी यही रवैया पाया जाता है। बंदरों के समूह में मादा चूजे पैदा होने पर उपल्या खुशी से झूम उठती है। नर पिगलेट पैदा होने पर मारे जाते हैं। ऐसा है 'उपल्या' का रवैया। दलित आंदोलन के कार्यकर्ताओं का भी यही रवैया है। इससे 'उपल्या' नाम उपन्यास के लिए सार्थक हो जाता है। 'हिन्दू' उपन्यास का समर्पण लेखक की भावुकता का परिचायक है। चूंकि उपन्यास एक कथा-उन्मुख साहित्यिक शैली है, इसलिए कोई भी भाषाई कलाकृति बिना कथा के नहीं पढ़ी जा सकती है। 'हिन्दू' उपन्यास के वर्णन के लिए प्रथम पुरुष और तृतीय पुरुष कथा पद्धति का प्रयोग किया गया है।

अंत में कह जा सकता है कि दलित उपन्यास 'आबेडकवाद' से प्रभावित हैं। ये रचनाएँ पाठकों में एक नई चेतना निर्माण कर उन्हें प्रेरणा देने का भी काम करती हैं। दलित साहित्य के मानदंडों की दृष्टि से इन उपन्यासों में लेखकों ने आंबेडकवादी तत्वों को संप्रेषित करने का सफल प्रयास किया है, जो निश्चित रूप से सराहनीय है। यह उपन्यास डॉ बाबासाहब आंबेडकर जी के विचारों को विश्व धरातल पर संप्रेषित करने में सक्षम है। दलित साहित्य में अन्य विधाओं की अपेक्षा उपन्यासों का सृजन बहुत कम हुआ है। इसलिए दलित उपन्यासों की दृष्टि से यह प्रारंभिक काल माना जा सकता है। दलित लेखक अब लिख रहे हैं, अभिव्यक्त हो रहे हैं। इसलिए उनकी भाषा में भले ही अलंकार, रस और छंद आदि नहीं होंगे लेकिन उनके पास शब्द है, जो उनकी भावनाओं को ही शब्दों के माध्यम सेव्यक्त कर रहे हैं। यह बात दलित उपन्यासों की दृष्टि में महत्वपूर्ण है जो इस विधा के विकास में सहायक सिद्ध हो सकती है।

सन्दर्भ

1. रामदरश मित्र, हिंदी उपन्यास एक अंतर्यात्रा.पू.सं.30
2. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी-भारत में दलित साहित्य एवं दलित चेतना निकष (शोध विशेषांक) दि.2012.पू.स.61
3. नरवानर-शरणकुमार लिंबाले-पू.सं. 172
4. डॉ. एन--सिंह-दलित साहित्य के विविध आया-दलित मीमांसा (आलेख) पु. सं. 13
5. ओमप्रकाश वाल्मीकि - दलित साहित्य का सौदर्यशास्त्र
6. 'उपल्या' - शरणकुमार लिंबाले
7. 'हिन्दू' — शरणकुमार लिंबाले